।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय २६ ।।

(१) भक्त पन्त (२) हरिश्चंद्र पितले और (३) गोपाल आंबड़ेकर की कथाएँ ।

इस सृष्टि में स्थूल, सूक्ष्म, चेतन और जड़ आदि जो कुछ दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब एक ब्रह्म है और इसी एक अद्वितीय वस्तु ब्रह्म को ही हम भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित करते तथा भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखते हैं। जिस प्रकार अँधेरे में पड़ी हुई एक रस्सी या हार को हम भ्रमवश सर्प समझ लेते हैं; उसी प्रकार हम समस्त पदार्थों के केवल बाह्य स्वरुप को ही देखते हैं, न कि उनके सत्य स्वरुप को। एकमात्र सद्‌गुरु ही हमारी दृष्टि से माया का आवरण दूर कर हमें वस्तुओं के सत्यस्वरुप का यथार्थ में दर्शन करा देने में समर्थ हैं। इसलिए आआ, हम श्री सद्‌गुरु साईमहाराज की उपासना कर उनसे सत्य का दर्शन कराने की प्रार्थना करें, जो कि ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं।

आन्तरिक पूजन

श्री. हेमाड़पंत उपासना की एक सर्वथा नवीन पद्धति बताते हैं। वे कहते हैं कि सद्‌गुरु के पादप्रक्षालन के निमित्त आनन्द-अश्रु के उष्ण जल का प्रयोग करो। उन्हें सत्यप्रेमरुपी चन्दन का लेप कर, दृढ़विश्वासरुपी वस्त्र पहनाओ तथा अष्ट सात्विक भावों के स्थान पर कोमल और एकाग्र चित्तरुपी फल उन्हें अर्पित करा। भावरुपी बुक्का उनके श्री मस्तक पर लगा, भक्ति की कछनी बाँध, अपना मस्तक उनके चरणों पर रखो। इस प्रकार श्री साई को समस्त आभूषणों से विभूषित कर, उन्हें अपना सर्वस्व निछावर कर दो। उष्णता दूर करने के लिये भाव की सदा चँवर डुलाओ। इस प्रकार आनन्ददायक पूजन कर उनसे प्रार्थना करो-

'' हे प्रभु साई! हमारी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी बना दो। सत्य और असत्य का विवेक दो तथा सांसारिक पदार्थों से आसक्ति दूर कर हमें आत्मानुभूति प्रदान करो। हम अपनी काया और प्राण आपके श्री चरणों में अर्पित करते हैं। हे प्रभु साई! मेरे नेत्रों को तुम अपने नेत्र बना लो, ताकि हमें सुख और दुःख का अनुभव ही न हो। हे साई! मेरे शरीर और मन को तुम अपनी इच्छानुकूल चलने दो तथा मेरे चंचल मन को अपने चरणों की शीतल छाया में विश्राम करने दो।''

अब हम इस अध्याय की कथाओं की ओर आते हैं।

भक्त पन्त

एक समय एक भक्त, जिनका नाम पंत था और जो एक अन्य सद्‌गुरु के शिष्य थे, उन्हें शिरड़ी पधारने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनकी शिरड़ी आने की इच्छा तो न थी, परन्तु ''मेरे मन कछु और है, विधिता के कुछ और'' वाली कहावत चरितार्थ हुई। वे रेल(पश्चिम रेल्वे) द्वारा यात्रा कर रहे थे, जहाँ उनके बहुत से मित्र व सम्बन्धियों से अचानक ही भेंट हो गई, जो कि शिरड़ी यात्रा को ही जा रहे थे। उन लोगों ने उनसे शिरड़ी तक साथ-साथ चलने का प्रस्ताव किया। पंत यह प्रस्ताव अस्वीकार न कर सके। तब वे सब लोग बम्बई में उतरे और इसी बीच पन्त विरार में उतर अपने सद्‌गुरु से शिरड़ी प्रस्थान करने की अनुमति ले कर तथा आवश्यक खर्च आदि का प्रबन्ध कर, सब लोगों के साथ रवाना हो गए। वे प्रातःकाल वहाँ पहुँच गए और लगभग ११ बजे मस्जिद को गए। वहाँ पूजनार्थ भक्तों का एकत्रित समुदाय देख सब को अति प्रसन्नता हुई, परन्तु पन्त को अचानक ही मूर्च्छा आ गई और वे बेसुध होकर वहीं गिर पड़े। तब सब लोग भयभीत होकर उन्हें स्वस्थ करने के समस्त उपचार करने लगे। बाबा की कृपा से और मस्तक पर जल के छींटे देने से वे स्वस्थ हो गए और ऐसे उठ बैठे, जैसे कि कोई नींद से जगा हो। त्रिकालज्ञ बाबा ने यह सब जानकर कि यह अन्य गुरु का शिष्य है, उन्हें अभय-दान देकर उनके गुरु में ही उनके विश्वास को दृढ़ करते हुए कहा कि '' कैसा भी आओ, परन्तु भूलो नहीं, अपने ही स्तंभ को दृढ़तापूर्वक पकड़कर

सदैव स्थिर हो उनसे अभिन्नता प्राप्त करो।'' पन्त तुरन्त इन शब्दों का आशय समझ गए और उन्हें उसी समय अपने सद्‌गुरु की स्मृति हो आई। उन्हें बाबा के इस अनुग्रह की जीवन भर स्मृति बनी रही।

श्री. हरिश्चन्द्र पितले

बम्बई में एक श्री. हरिश्चन्द्र नामक सद्‌गृहस्थ थे। उनका पुत्र मिर्गी रोग से पीड़ित था। उन्होंने अनेक प्रकार की देशी व विदेशी चिकित्साएँ कराईं, परन्तु उनसे कोई लाभ न हुआ। अब केवल यही उपाय शेष रह गया था कि किसी सन्त के चरण-कमलों की शरण ली जाए। १५ वें अध्याय में बतलाया जा चुका है कि श्री. दासगणू के सुमधुर कीर्तन से श्री साईबाबा की कीर्ति बम्बई में अधिक फैल चुकी थी। पितले ने भी सन् १९१० में उनका कीर्तन सुना और उन्हें ज्ञात हुआ कि श्री साईबाबा के केवल कर-स्पर्श तथा दृष्टिमात्र से ही असाध्य रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। तब उनके मन में भी श्री साईबाबा के प्रिय दर्शन की तीव्र इच्छा जागृत हुई। यात्रा का प्रबन्ध कर भेंट देने को फलों की टोकरी लेकर स्त्री और बच्चों सहित वे शिरड़ी पधारे। मस्जिद पहुँचकर उन्होंने चरण-वंदना की तथा अपने रोगी पुत्र को उनके श्री-चरणों में डाल दिया। बाबा की दृष्टि उस पर पड़ते ही उसमें एक विचित्र परिवर्तन हो गया। बच्चे ने आँखे फेर दीं और बेसुध हो कर गिर पड़ा उसके मुँह से झाग निकलने लगी तथा शरीर पसीने से भींग गया और ऐसी आशंका होने लगी कि अब उसके प्राण निकलने ही वाले हैं। यह देखकर उसके माता-पिता अत्यंत निराश होकर घबड़ाने लगे। बच्चे को बहुधा थोड़ी मूर्च्छा तो अवश्य आ जाया करती थीं, परन्तु यह मूर्च्छा दीर्घ काल तक रही। माता की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी और वह दुःखग्रसित हो आर्तनाद करने लगी कि मैं ऐसी स्थिति में हूँ, जैसे कि एक व्यक्ति, चोरों के डर से भाग कर किसी घर में प्रविष्ट हो जाए और वह घर ही उसके ऊपर गिर पड़े; या एक भक्त मन्दिर में पूजन के लिए जाए और वह मन्दिर ही उसके ऊपर गिर पड़े या एक गाय शेर के डर से भागकर किसी कसाई के हाथ लग जाए; या एक स्त्री सूर्य के ताप से व्यथित होकर वृक्ष की छाया में जाए और वह वृक्ष ही उसके ऊपर गिर पड़े। तब बाबा ने सान्त्वना देते हुए कहा कि '' इस प्रकार प्रलाप न कर, धैर्य धारण करो। बच्चे को अपने निवास्थान पर ले जाओ। वह आधा घण्टे के पश्चात् ही होश में आ जाएगा।'' तब उन्होंने बाबा के आदेश का तुरन्त पालन किया। बाबा के वचन सत्य निकले। जैसे ही उसे वाड़े में लाए कि बच्चा स्वस्थ हो गया और पितले परिवार-पति, पत्नी व अन्य सब लोगों को महान् हर्ष हुआ और उनका सन्देह दूर हो गया। श्री. पितले अपनी धर्मपत्नी सहित बाबा के दर्शनों को आए और अति विनम्र होकर आदरपूर्वक चरण-वन्दना कर पादसेवन करने लगे। मन ही मन वे बाबा को धन्यवाद दे रहे थे। तब बाबा ने मुस्कराकर कहा कि '' क्या तुम्हारे समस्त विचार और शंकायें मिट गईं? जिन्हें विश्वास और धैर्य है, उनकी रक्षा श्री हरि अवश्य करेंगे।'' श्री. पितले एक धनाढ्य व्यक्ति थे, इसलिए उन्होंने अधिक मात्रा में मिठाई बाँटी और उत्तम फल तथा पान बीड़े बाबा को भेंट किए। श्रीमती पितले सात्विक वृत्ति की महिला थीं। वे एक स्थान पर बैठकर बाबा की ओर प्रेमपूर्ण दृष्टि से निहारा करती थीं। उनकी आँखों से प्रसन्नता के आँसू गिरते थे। उनका मृदु और सरल स्वभाव देखकर बाबा अति प्रसन्न हुए। ईश्वर के समान ही सन्त भी भक्तों के अधीन हैं। जो उनकी शरण में जाकर उनका अनन्य भाव से पूजन करते हैं, उनकी रक्षा सन्त करते हैं। शिरड़ी में कुछ दिन सुखपूर्वक व्यतीत कर पितले परिवार बाबा के समीप मस्जिद में गया और चरण-वन्दना कर शिरड़ी से प्रस्थान करने की अनुमति माँगी। बाबा ने उन्हें उदी देकर आशीर्वाद दिया। पितले को पास बुलाकर वे कहने लगे''बापू! पहले मैंने तुम्हें दो रुपये दिए थे और अब मैं तुम्हें तीन रुपये देता हूँ। इन्हें अपने पूजन में रखकर नित्य इनका पूजन करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।'' श्री. पितले ने उन्हें प्रसादस्वरुप ग्रहण कर, बाबा को पुनः साष्टांग नमस्कार किया तथा आशीष के लिए प्रार्थना की। उन्हें एक विचार भी आया कि प्रथम अवसर होने के कारण मैं इसका अर्थ समझने में असमर्थ हूँ कि दो रुपये मुझे पहले कब दिए थे?

वे इस बात का स्पष्टीकरण चाहते थे, परन्तु बाबा मौन ही रहे। बम्बई पहुँचने पर उन्होंने अपनी वृध्द माता को शिरड़ी की विस्तृत वार्त्ता सुनाई और उन दो रुपयों की समस्या भी उनसे कही। उनकी माता को भी पहले-पहल तो कुछ समझ में न आया, परन्तु पुरी तरह विचार करने पर उन्हें एक पुरातन घटना की स्मृति हो आई, जिसने यह समस्या हल कर दी। उनकी वृद्ध माता कहने लगीं कि '' जिस प्रकार तुम अपने पुत्र को लेकर श्री साईबाबा के दर्शनार्थ गए थे, ठीक उसी प्रकार तुम्हें लेकर तुम्हारे पिता अनेक वर्षों पहले अक्कलकोटकर महाराज के दर्शनार्थ गए थे। महाराज पूर्ण सिद्ध, योगी, त्रिकालज्ञ और बड़े उदार थे। तुम्हारे पिता परम भक्त थे। इस कारण उनकी पूजा स्वीकार हुई। तब महाराज ने उन्हें पूजनार्थ दो रुपये दिए थे, जिनकी उन्होंने जीवनपर्यन्त पूजा की। उनके पश्चात् उनकी पूजा यथाविधि न हो सकी और वे रुपये खो गये। कुछ दिनों के उपरान्त उनकी पूर्ण विस्मृति भी हो गई। तुम्हारा सौभाग्य है, जो श्री अक्कलकोटकर महाराज ने साईस्वरुप में तुम्हें अपने कर्तव्यों और पूजन की स्मृति

कराकर आपत्तियों से मुक्त कर दिया है। अब भविष्य में जागरुक रहकर समस्त शंकाएँ और सोच विचार छोड़कर अपने पूर्वजों को स्मरण कर रिवाजों का अनुकरण कर, उत्तम प्रकार का आचरण अपनाओ। अपने कुलदेव तथा इन रुपयों की पूजा कर उनके यथार्थ स्वरुप को समझो और सन्तों का आशीर्वाद ग्रहण करने में गर्व मानो। श्री साई समर्थ ने दया कर तुम्हारे हृदय में भक्ति का बीजारोपण कर दिया है और अब तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम उसकी वृद्धि करो।'' माता के मधुर वचनामृत का पान कर श्री. पितले को अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्हें बाबा की सर्वकालज्ञता विदित हो गई और उनके श्री दर्शन का भी महत्व ज्ञात हो गया। इसके पश्चात् वे अपने व्यवहार में अधिक सावधान हो गए।

श्री. आम्बड़ेकर

पूने के श्री. गोपाल नारायण आम्बडेकर बाबा के परम भक्तों में से एक थे, जो ठाणे जिला और जव्हार स्टेट के आबकारी विभाग में दस वर्षो से कार्य करते थे। वहाँ से सेवानिवृत्त होने पर उन्होंने अन्य नौकरी ढूँढी, परन्तु वे सफल न हुए। तब उन्हें दुर्भाग्य ने चारों ओर से घेर लिया, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति और भी अधिक दयनीय हो गई। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने सात वर्ष व्यतीत किए। वे प्रति वर्ष शिरड़ी जाते और अपनी दुःखदायी कथा वार्त्ता बाबा को सुनाया करते थे। सन् १९१६ में तो उनकी स्थिति और भी अधिक चिन्ताजनक हो गई। तब उन्होंने शिरड़ी जाकर आत्महत्या करने की ठानी। इसलिए वे अपनी पत्नी को साथ लेकर शिरड़ी आये और वहाँ दो मास तक ठहरे। एक रात्रि को दीक्षितवाड़े के सामने एक बैलगाड़ी पर बैठे-बैठे उन्होंने कुएँ में गिर कर प्राणान्त करने का और साथ ही बाबा ने उनकी रक्षा करने का निश्चय किया। वहीं समीप ही एक भोजनालय के मालिक श्री. सगुण मेरु नायक ठीक उसी समय बाहर आकर उनसे इस प्रकार वार्त्तालाप करने लगे कि '' क्या आपने कभी श्री अक्कलकोट महाराज की जीवनी पढ़ी है?'' सगुण से पुस्तक लेकर उन्होंने पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते वे एक ऐसी कथा पर पहुँचे, जो इस प्रकार थी- श्री अक्कलकोटकर महाराज के जीवन काल में एक व्यक्ति असाध्य रोग से पीड़ित था। जब वह किसी प्रकार भी कष्ट सह न सका तो वह बिलकुल निराश हो गया और एक रात्रि को कुएँ में कूद पड़ा। तत्क्षण ही महाराज वहाँ पहुँच गए और उन्होंने स्वयं अपने हाथों से उसे बाहर निकाला। वे उसे समझाने लगे कि '' **तुम्हें अपने शुभ अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना चाहिए। यदि भोग अपूर्ण रह गया तो पुनर्जन्म धारण करना पड़ेगा, इसलिए मृत्यु से यह श्रेयस्कर है कि कुछ काल तक उन्हें सहन कर पूर्व जन्मों के कर्मों का भोग समाप्त कर सदैव के लिए मुक्त हो जाओ।''**

यह सामयिक और उपयुक्त कथा पढ़कर आम्बड़ेकर को महान् आश्चर्य हुआ और वे द्रवित हो गए।

यदि इस कथा द्वारा उन्हें बाबा का संकेत प्राप्त न होता तो अभी तक उनका प्राणान्त ही हो गया होता। बाबा की व्यापकता और दयालुता देखकर उनका विश्वास दृढ़ हो गया और वे बाबा के परम भक्त बन गए। उनके पिता श्री अक्कलकोटकर महाराज के शिष्य थे और बाबा की इच्छा भी उन्हें के पद-चिन्हों का अनुकरण कराने की थी। बाबा ने उन्हें आशीर्वाद दिया और अब उनका भाग्य चमक उठा। उन्होंने ज्योतिष शास्त्र के अध्ययन में निपुणता प्राप्त कर उसमें बहुत उन्नति कर ली और बहुत-सा धन अर्जित करके अपना शेष जीवन सुख और शांन्तिपूर्वक व्यतीत किया।

।। सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।